ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 602-604
www.allresearchjournal.com
Received: 29-11-2015
Accepted: 30-12-2015

राजेश
गांव अरनियांवाली
जिला सिरसा

Correspondence
राजेश
गांव अरनियांवाली
जिला सिरसा

शंकर शेष के नाटक साहित्य में सामाजिक सरोकार

राजेश

शंकर शेष के नाटक एक ओर हृद्य तत्व से जुड़ी भावनाओं को वाणी देती है तो दूसरी और बुद्धि से जुड़ी अनेक विकसनशील भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने में सक्षम हैं। इस दुनिया के लोग लेकिन सहज ही विसंगतियों को स्वीकार नहीं कर लेते हैं वे उदास होते हैं, क्रूद होते हैं, आक्रोश व्यक्त करते हैं उत्तेजनाओं में से गुजरते हैं– अपने अन्दर निरंतर एक सुलगती हुई आग महसूस करते हैं और उनकी यह अस्वीकृति ही उनके जिंदा होने को प्रमाणित करती है – यही बेचैनियों नाटककार की चेतना के असली बिंदु उभारती हैं। आज के नेताओं की दुष्प्रवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है, जिसका एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है। जैसे–

"युवा : जल्दी सुनाव यार, क्या फार्मूला है।

युवा : तो फिर ध्यान से सुनो। झूठ की जड़ एक सेर। बेईमानी के बीज दो सेर। बदनीयती का वनफ्श तीन सेर और मक्कारी का मुनाक्का एक गड़्डी । कुलमिलाके हुए ग्यारह सेर। अब इन चीजों को एक साथ मिलाकर खाटबाजी की खरल में रगड़कर, पार्टीबाजी की पोटली में बाँधो।... पत्तेबाजी के पानी में भिगो दो... अब अरमारी की हाँडी में डाल, चालबाजी के चुल्हे पर चढ़ा दो। हरामीपने की हल्की–हल्की आच पर पकाकर जब जोशांदा तैयार हो जाए तो छल–कपट की छलनी से छान लो।... छह महीने के अन्दर–अन्दर लीड़री चमक उठेगी।" [1]

इसमें नेताओं की सारी दुष्पवृत्तियाँ मिल जाती है, इसमें व्यंग्य की अन्तर्धारा प्रवाहित होती है। खंडहर में आयोजित शोकसभा में भाषणों का सिलसिला बना रहता है, इन संवादों के माध्यम से पूर्ण पुरूष भरोसेजी की त्यागी, तपस्वी, सेवाभावी वृत्ति हमारे सामने आती है। डॉ. नीलिमा शर्मा चेहरे नाटक के संवादों के बारे में कहती हैं, "लड़ाई, झगड़े, मार–पीट, शोक और पंचायत के बीच सभी अपने–अपने मन में संवाद बोलते हैं। यह नाटक विविध प्रकार के स्वाभाविक संवादों और भाषा का नाटक है आकर्षण, घटित दृष्य स्वतः उपस्थित करते हैं।" [2]

शंकर शेष ने समाज के प्रति दायित्वों को निभाकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति की है। राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि पृष्ठ भूमि में व्याप्त आधुनिक भाव बोध को केंद्रित करके नाटकों की रचना की गई है। अनीति की अतिशयता से पनपती अव्यवस्था के प्रति लेखक का सुझाव रहा है। प्रगतिशील चेतना की मनोवृति का हुआ है। यथार्थ–बोध एवं युग बोध की मिश्रित अभिव्यक्ति इस काव्य संग्रह में हुई है। नाटककार अपने समकालीन जीवन की समस्त विसंगतियों से जुड़ा हुआ महसूस करता है, यह जुड़ाव उसे बहुत बेचैन और त्रासद अनुभवों के बीच ला खड़ा करता है। यही कारण है कि उनका समस्त लेखन विसंगतियों और आधुनिक जीवन का खालीपन और मानसिक कष्टों से सम्बद्ध दिखाई देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटककार मानवीय स्तर पर अपनी सतह को बरकरार रखना चाहते हैं और इसीलिए सुविधाओं के झूठ और आधुनिक समृद्धियों की पीछे छिपी क्रूरताओं को उनकी संवेदना बहुत तीव्रता से महसूस करती है। उनके मनः मष्तिष्क में जो यर्थाथ बोध है वह अपने खिलाफ खड़ी हुई सारी स्थितियों से लड़ाई की तथा उतेजना की मुद्रा में, उनके लेखन में मूर्त होता है, हमें कोई बहुत साफ और स्थूल तौर पर उनकी यर्थाथ सोच के बिंदु समझ नहीं आते लेकिन तमाम दबावों, विडम्बनाओं और व्यवस्थाओं के प्रति किसी न किसी स्तर पर उनका संघर्ष अवश्य पकड़ में आ जाता है।

शंकर शेष का नाटककार अपने परिवेश में खड़ा रहकर और समस्त तकलीफों से गुजरकर भी पलायन की बात नहीं सोचता है क्योंकि वह अपने को परिवेश से अलग कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं मानता है । सच्चा नाटककार आज पहले की अपेक्षा और भी अधिक अभागा हो गया है क्योंकि उसे उन लोगों के प्रति अपने नाटककार –कर्म में अनुभव की तीव्रता में उत्तरदायी होना पड़ता है, जिन्हें सुविधा पूर्वक जीने की आदत पड़ गई है, जो एक बिस्तर और रजाई के लिए दुनिया का बड़े से बड़ा गुनाह कर सकते हैं और उनके कानों पर अपराध की जूं तक नहीं रेंगती, जो भाषा को तो तर्क–जाल में उलझा सकते हैं, लेकिन संपूर्ण जीवन की कठिन यंत्रणाओं को न तो सह सकते हैं न यह बात उनकी समझ

में आती है – बल्कि जिनके लिए यह सब कुछ मजाक है। रचनाकार ऐसे लोगों की क्रूरताओं से भी अपने को पृथक नहीं रख सकता फिर इससे बड़ा नरक और क्या हो सकता है। एक उदाहरण देखिए–

'रक्तबीज' यह नाटक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित है। महानगर की हिन्दी भाषा कास्मापोलिटीन भाषा बन गई है। नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में संवादों के माध्यम से इसी कास्मोपोलिटीन भाषा का प्रयोग किया है। रक्तबीज के संवाद देशकाल तथा पात्रों के अनुकूल होने से बड़े स्वाभाविक बन गये हैं। छोटे–छोटे संक्षिप्त संवादों के साथ–साथ लम्बे संवादों का भी आयोजन हुआ है। परंतु लम्बे संवाद समय और स्थान की दृष्टि से स्वाभाविक लगते हैं। नाटक के छोटे–छोटे संवादों में भी आकर्षण की अद्‌भूत क्षमता है। जैसे–

"स्त्री : जानते हो वह मुझे स्वीटजरलैंड चलने के लिए कह रहा है। वह भी अगले हफ्ते।

छोटा पु(पति): अच्छा बड़ी किस्मत वाली हो, कितने दिनों के लिए जा रहे हो तुम लोग।

स्त्री : तुम्हे यह खबर सुनकर गुस्सा नहीं आया क्या?

छोटा पु(पति) : क्यों आयेगा? फारेन ट्रिप क्या छोटी बात होती है।"[3]

रक्तबीज नाटक में मूलक पात्रों के साथ मानस पात्रों के संवादों का भी आयोजन हुआ है। डॉ. नीलिमा शर्मा 'रक्तबीज' के संवादों के बारे में कहती हैं, "इस नाटक में दूसरा समानान्तर दृश्य मानस पात्रों के साथ मूलक पात्रों के संवाद का है। ऐसे दृश्यों में नाट्य–भाषा बड़ी ठोस, स्वच्छ और दृश्य कौशल से पुष्ट है।"[4] संवाद का एक स्फुट पर बहुत सहजता से प्रयुक्त रुप अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग में मिलता है। प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक में बड़े आदमी की अफसरी को बताने के लिए अंग्रेजीमय हिन्दी संवाद का प्रयोग किया है, जिससे उसका चरित्र कुछ अलग ही लगने लगता है। इस संवाद के माध्यम से आज के अफसरों की अंग्रेजी दिखाने की प्रवृत्ति उभरती है और उनका बनावटीपन व्यक्त होता है। जैसे–

"बड़ा पुरुष : आफकोर्स! (बडा घूँट... फिर स्त्री का गिलास उसके होठों तक ले जाता हुआ)। पियो! (स्त्री बड़ा घुट पीती है) थोड़ा और... । (पीती है) फिनिश इट। (गिलास खाली करती है)... नाउ आय विल टेल यू। आय रिगार्ड माय वाईफ ॲज अ मदर आफ माय चिल्ड्रन।" [5]

निसंदेह स्वतंत्रता पूर्व के नाटककारयों का दृष्टिकोण स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के प्रति बिल्कुल अलग हैं। उनके सामने तब एक लक्ष्य भी था–एक समग्र लक्ष्य–आज़ादी सामने सब कुछ साफ़ था–संघर्ष भी, नैतिकता भी, लेखक की उपलब्धि भी, लेखकीय कर्म की मूल्यवत्ता भी।

आलोच्य नाटककार ने मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कहीं परंपरागत मूल्य कभी, प्रगतिशील चेतना कहीं शहीद–नमन तो कहीं अहसास की पीड़ा से जुड़ी मनोवृतियों को मूर्त रूप दिया है। तनाव इच्छाहीनता में बदल जाता है ,क्योंकि निजी अभिशाप के प्रतिकार का अर्थ होता है। नाटककार द्वारा एक और अन्तर्द्वन्द्व को बहुत ही संवेदनशील बारीकी और गहरी कलात्मकता के साथ उभारा गया है। नाटककार मूक है इस चुप के पीछे, इस एकाएक सपाट और तटस्थ बेचैनी भरी मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है जिसे नाटककार की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है।

नाटककार ने इन संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिकता तथा उनके अन्तर्द्वद्व को उद्‌घाटित किया है। एक और द्रोणाचार्य के संवादों में सरलता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, व्यंग्यात्मकता, मार्मिकता तथा प्रभाव क्षमता ये गुण प्रयुक्त हैं। संवाद सरल, चुस्त और संवेद्य होने से संपूर्ण नाटक में संवादों की भाषा दुरुह कहीं भी नहीं है। इसलिए नाटक के पात्र अपने भावों को संवादों द्‌वारा सरलता से तथा सहजता से दर्शकों तथा पाठकों तक संप्रेषित करते हैं। संवाद की मूल संकल्पना ही दो पात्रों की बातचीत है। बातचीत में एक दूसरे से मिलती जुलती लिंक अनिवार्य होती है, यदि उसमें तर्क पूर्ण प्रश्नोत्तर भी समाहित हो तो संवाद का प्रखरतम रुप सामने आ जाता है, "एक और द्रोणाचार्य में एकलव्य को अंगुठा काटकर लाने के लिए नेपथ्य में भेजकर शंकर शेष ने द्रोणाचार्य व अर्जुन के बीच जो संवाद कराये हैं, वे हर दृष्टि से नाट्यसाहित्य में मील के पत्थर हैं।"[6] उदाहरण के लिए यह संवाद द्रष्टव्य है। जैसे–

"अर्जुन : गुरुदेव, आपकी यह क्रुरता समझ में नहीं आई।

द्रोणाचार्य : क्यों?

अर्जुन : एकलव्य से अंगूठा क्यों माँगा?

द्रोणाचार्य : धर्म की व्यवस्था के लिए। जानते नहीं शूद्रों और वनवासियों को धुनर्विद्‌या की शिक्षा नहीं दी जा सकती।

अर्जुन : लेकिन आपने शिक्षा दी कहाँ? आपको गुरु–दक्षिणा देना भी क्या अपराध हो गया?"[7]

शंकर शेष को अपने होने को सिद्ध करने की, अपने अस्तित्व की सार्थकता को प्रतिष्ठित करने की तीव्र आकांक्षा है। सारी वैयक्तिक बेचैनियों के बीच भी उसे अपने बाहर की सारी विद्रूपताओं का पूरा एहसास है। नाटककार का मन अपने समकालीन जीवन की समस्त विसंगतियों से जुड़ा हुआ महसूस करता है, यह जुड़ाव उसे बहुत बेचैन और त्रासद अनुभवों के बीच ला खड़ा करता है। यही कारण है कि उनका समस्त लेखन विसंगतियों और आधुनिक जीवन के खालीपन और मानसिक कष्टों से सम्बद्ध दिखाई देता है। शंकर शेष को पद्धतियों के सारे खोखलेपन का एहसास है– "मंजू : ऐ मिस्टर आप कौन है? सीधे बिना पूछे घुसे चले आ रहे हैं।

आनंद : ओ, हो अब इस मकान में आने के लिए पूछना भी जरूरी हो गया है ?

मंजू : जी हाँ। हर सभ्य आदमी, जब किसी के घर में आता है, तो पहले दरवाजा खटखटा लेता है।

आनंद : पर असभ्य आदमी किसी के घर आता है, तब क्या करता है ?

मंजू : तब वह आप की तरह आता है। कहिए क्या काम है?" [8]

नाटक में कई अनुभूत सत्यों को भी नाटककार ने संवादों के माध्यम से प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया है। विशाखा के इस संवाद में मानवीय जीवन का बहुत बड़ा सत्य निहित है, जीवन में यदि कुछ विश्वासों की आवश्यकता होती है तो कुछ अंधविश्वासों की भी।" [9] साथ–साथ नाटक में बिन्दु चिन्हों का प्रयोग भी हुआ है। डॉ. नीलिमा शर्मा 'बिन बाती के दीप' नाटक के संवादों के बारे में कहती हैं, "नाटक में छोटे–छोटे तीखे और मंचीय अनुकूलता लिए हुए संवादों की बहुलता है, लेकिन उसे संलग्न दृश्यों में बड़े–बड़े एकरस संवादों की संख्या भी कम नहीं है जो आगे–पीछे दृश्यगत प्रभाव को कम कर देते हैं।" [10] वे उदास होते हैं, क्रूद होते हैं, आक्रोश व्यक्त करते हैं। उदाहरण देखिए–

"फन्दी : वकीलों के नाम साले क्या भगवान के नाम हैं जिनका सुनना जरूरी है? पर भगतराम का नाम याद रह गया है।

वकील : लेकिन वह कैसे ?

फन्दी : भगतराम मेरे बाप का नाम था, वकील साहब

वकील : वही जिसकी तुमने हत्या कर डाली, जिसे तुमने मार डाला?

फन्दी : हाँ वही...। बाप केवल एक ही होता है, वकील साहब।"[11]

ऐसा नहीं है कि नाटककार की मुक्ति पाने की या उबरने की सचेतना बिल्कुल ही कायर हो उठी है– अब भी जहां तां बैठकर तसल्ली से सपने देखते हुए कए काल्पनिक तृप्ति और सुख पाने की हसरत उसमें बची हुई है। नाटककार ने लिखा है– शिल्पी : क्योकि वह मेरी रचना है...अलका, तुम मेरी रचना नहीं हो...यह प्रतिमा मेरी अपनी रचना है... मेरा अपना सृजन है।... इसे मैंने जन्म दिया है।

अलका : मैं दूसरों की रचना हूँ, इसलिए, तुम मुझे नष्ट कर सकते हो–पर अपनी रचना को नहीं? तो लाओ मैं नष्ट कर देती हूँ।"[12]

आज समाज–सेवा एक धंधा बन गया है। बरसाती मेंढ़कों की तरह समाज सेवक पैदा हो रहे हैं। समाज सेवा के नाम पर दिखावा

और औपचारिकता मात्र शेष रही है। उसका एक नमूना 'नई सभ्यता : नये नमूने' में मिलता है। अमीर बाप की बेटी स्मृति महिला–समाज में काम करती है और इन दिनों गंदी बस्तियों के बच्चों को नहलाने का कार्य चल रहा है। उसका प्रेमी 'कृष्ण' इनकी समाज सेवा से अच्छी तरह परिचित है। वह ऐसी महिला समाज सेवियों पर व्यंग्य करता है, "कृष्ण : फिर लक्स टायलेट से उन्हें नहलाते रहना। वाह रे महिला समाज! दस–बीस औरतें कीमती साडियाँ पहन कर बीस–बीस हजार रुपयों की गाड़ी से उतरेंगी और तीन बच्चों को नहला कर पन्द्रह फोटो खिचवाएँगी।"[13] 'नई सभ्यता : नये नमूने' नाटक के संवाद छोटे–छोटे, चुस्त तथा चुटीले हैं।

छोटे–छोटे वाक्यों के संवाद प्रवाहमयी बन गये हैं। जैसे–

"स्मृति : सच कह रहे हो उधो ?

उधो : देवकी की कसम मैडम ।

स्मृति : (चौंककर) यह देवकी कौन है उधो...

उधो : कोई नहीं मैडम... देवकी मेरी माँ का नाम है।

स्मृति : माफ करना उधौ मैं तो कुछ और ही समझी थी।" [14]

मुख्य कथा को आगे बढ़ाने में सहायक सामाकि ..सरोकार से भरपूर होने के बावजूद भाषा आम आदमी के समीप है। भाषा सौंदर्य ने हास्य–व्यंग्य के छीटों से नाटक को सरोबार रखा है।"[15] इस तरह से नाटक का समूचा व्यंग्य संवादों में है। 'तिल का ताड़' नाटक में व्यंग्यात्मक संवादों का आयोजन भी भरपूर मात्रा में हुआ है, ब्रह्मचारी तथा प्राणनाथ के उक्त संवादों से व्यंग्य झलकता है। जैसे–

"ब्रह्मचारी : अरे प्राणनाथ जी, बड़ी झँझटों में फंसा हूँ। अपने शहर में अखिल भारतीय ब्रह्मचारी समाज का अधिवेशन हो रहा है न? उसी के लिए चंदा इकटठ् कर रहा हूँ।

प्राणनाथ : क्या देश का ब्रह्मचर्य चंदा देने से टिकेगा?

ब्रहमचारी : मजाक की बात नहीं है प्राणनाथ जी, सीरियसली सोचने की बात है। मैं तो आप से पच्चीस रुपये से कम चंदा नहीं लूँगा।

प्राणनाथ : भाई माफ करो, ब्रह्चारीजी, अपना ब्रह्मचर्य इतना महँगा नहीं है।" [16]

नाटककार ने साहित्य को समाज से जोड़ने का आग्रह करते हुए काव्य रचना की है। नाटककार का मूल उद्देश्य नाटककार कर्म पर केन्द्रित रहा है। जीवन के राग–विराग, हर्श–विशाद एवं सुख–दुख के साथ–साथ समाज सापेक्ष भावना को इन्होंने अनिवार्य माना है। नाटककार एक उम्र तक आकर आदमी की छोटी–मोटी प्रतिष्ठाएं इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह उन्हें बचाने के लिए बड़ी–बड़ी मजेदार संभावानाओं को भी इंकार कर देता है। इस तरह एक प्रकार की कायरता को वह कवच के रूप में इस्तेमाल करता है। सारे डर और सीमाओं को तोड़कर स्थापित किए गए उस स्वतंत्र–संबंध में ऐसा कौन–सा झूठ था कि अब केवल वासना भर शेष रह जाती है। नाटककारता का आलम्बन बहुत बेचैनी से शिनाख्त करना चाहता है कि आखिर उनके संबंध की मूलभूत प्यास कौन–सी थी–क्या वह सचमुच उन्मुक्त जीवन–बोध की तलाश की हसरत थी? वह महज सतही आकर्षण नहीं था।

संबंधों की चासनी में भावनाओं को डुबोना तो चाहते हैं, परंतु स्त्री पुरुष के दायरों में बंधे संबंधों और उनकी मर्यादा से नफरत करता है। स्वतंत्र–संबंधों की स्थापना आदि नाटककार की कुछ जीवंत अनुभव प्रदान करती है तो उनकी सारी खामियां भी, उनके बीच आने वाले खतरे भी स्वीकार है–जीवंतता और अनुभव की स्वतंत्रता की खातिर ही वह बहुत अर्से के बाद भी अपने पुराने संबंधों के साथ जीने की एक तीव्र इच्छा को महसूस करता है। यद्यपि इस बीच अतीत के वे सारे जुड़ाव जाने कहां टूट कर गायब हो गए हैं फिर भी शायद वे कुछ जिंदा क्षणों को फिर से पा सकें, इस संभावना की खातिर वे फिर से मिलने की कल्पना करते हैं। हालांकि अब समय का तकाजा है कि अब व्यवस्था और वर्जनाओं से टकराने की न कोई अहमियत बाकी है और न ही प्रतिष्ठाओं को ठुकराने का वह पुराना साहस। लेकिन बावजूद इसके वह कायर और झूके हुए, आदमी के रूप में अपनी कल्पना नहीं करना चाहता–उसका यह हट अमहत्वपूर्ण नहीं है इसमें चेतना में मिली हुई, स्वतंत्रताओं के लिए टकराने की मनःस्थिति के तेवर अभी शेष है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. विनय खंड 2 : चेहरे – शंकर शेष रचनावली, पृ.423
2. डॉ. नीलिमा शर्मा : साठोत्तर हिन्दी नाटक, पृ.171
3. डॉ. शंकर शेष : रक्तबीज, पृ.40
4. डॉ. नीलिमा शर्मा : साठोत्तर हिन्दी नाटक, पृ.170
5. डॉ. हेमंत कुकरेती : शंकर शेष, समग्र नाटक भाग दो, रक्तबीज, पृ.259
6. डॉ. रमाकान्त गावडे : शंकर शेष के नाटकों में युगबोध, पृ. 143
7. डॉ. हेमंत कुकरेती : शंकर शेष : समग्र नाटक भाग दो, एक और द्रोणाचार्य, पृ.114
8. वही, पृ.17
9. वही, पृ.119
10. डॉ. नीलिमा शर्मा : साठोत्तर हिन्दी नाटक, पृ.161
11. डॉ. शंकर शेष : फन्दी, पृ.15,16
12. डॉ. शंकर शेष : खजुराहो का शिल्पी, पृ.95
13. डॉ. विनय खंड 4, नई सभ्यता : नये नमूने – शंकर शेष रचनावली, पृ.43
14. डॉ. हेमंत कुकरेती : शंकर शेष : समग्र नाटक भाग एक, नई सभ्यता नये नमूने, पृ.376
15. डॉ. सुरेश एवं डॉ. वीणा गौतम : राजपथ से जनपथ नटशिल्पीः शंकर शेष, पृ.75
16. डॉ. हेमंत कुकरेती : शंकर शेषः समग्र नाटक –3, तिल का ताड़, पृ.274